आज की समस्याएँ

श्री प्रभातरञ्जन सरकार

Àj Kii Samasyà

© आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (केन्द्रीय कार्यालय) द्वारा सर्वस्वत्व संरक्षित ।

प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना इस पुस्तक को छापना या भाषान्तरण करना या इस पुस्तक के किसी भी अंश विशेष को किसी भी रूप में व्यवहार नहीं किया जा सकता है ।

रजिष्टर्ड कार्यालय : आनन्दनगर , पो ० बागलता
जिला पुरुलिया , प ० बं ०

कैम्प कार्यालय: ५२७ वी ० आई ० पी ० नगर
तिलजला , कलिकाता - १००

प्रथम बंगला संस्करण: बैशाखी पूर्णिमा १३६५ बंगाब्द
(३ मई, १९९९)

प्रथम हिन्दी संस्करण: माघी पूर्णिमा , १३६५ बंगाब्द
(२३ फरवरी, १९९९)

प्रथम मुद्रङ्कण: २१ अक्टूबर , १९९९

द्वितीय मुद्रङ्कण: १७ अप्रैल, २०११

प्रकाशक: आचार्य सुगतानन्द अवधूत
आनन्दमार्ग प्रचारक संघ
तिलजला , कलिकाता- १००

मुद्राकर: श्रीकाली आर्ट प्रेस २० ९सी,
विधान सरणी कलिकाता
७००००६

अक्षर विन्यास: श्री गणपति प्रेस ३६डी, बेथुन
रो , कलिकाता – ७००००६
दूरभाष : ९४३३१ ०५२७९

ISBN: 978-81-7252-282-7

मूल्य : 20 / - रुपये

रोमन संस्कृत वर्णमाला

विभिन्न भाषाओं का ठीक - ठीक उच्चारण करने के लिए तथा द्रुतलेखन के प्रयोजन को समझकर निम्नलिखित पद्धति से रोमन संस्कृत वर्णमाला का प्रवर्त्तन किया गया है

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः	
অ	আ	ই	ঈ	উ	ঊ	ঋ	ঌ	ঌ	ৡ	এ	ঐ	ও	ঔ	অং	অঃ	
a	á	i	ii	u	ú	r	rr	lr	lrr	e	ae	o	ao	am	ah	

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ক	খ	গ	ঘ	ঙ	চ	ছ	জ	ঝ	ঞ
ka	kha	ga	gha	uṇa	ca	cha	ja	jha	iṇa

ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
ট	ঠ	ড	ঢ	ণ	ত	থ	দ	ধ	ন
́ta	́tha	́da	́dha	́na	ta	tha	da	dha	na

प फ ब भ म

প ফ ব ভ ম

Pa pha ba bha ma

य र ल व

য র ল ব

ya ra la va

श ष स ह क्ष

শ ষ স হ ক্ষ

sha śa sa ha kśa

अँ ञ ऋषि छाया ज्ञान संस्कृत ततोऽहं

অঁ ঞ ঋষি ছায়া জ্ঞান সংস্কৃত ততোऽহং

aṋ jiṋa rśi cháya jiṋána saḿskrta tato’haḿ

a á b c d d́ e g h i j k l m ḿ n

ń ṋ o p r s ś t t́ u ú v y

समग्र विश्‍व में बहुत प्रचारित रोमन लिपि के २९

अक्षर मात्र से संस्कृत भाषा का ठीक - ठीक उच्चारण किया

जाना सम्भव है । इसमें युक्ताक्षर का भी झमेला नहीं है । अरबी , फारसी और अन्यान्य f, q , gh , z , प्रभुति अक्षरों का प्रयोजन रहता है , संस्कृत में नहीं । शब्द के मध्य या शेष में 'ड' , 'ढ' यथाक्रम 'ड़' और 'ढ़' रूप में उच्चारित होते हैं । 'य' (जहाँ 'य' का उच्चारण 'इ' , 'अ' होता है) के समान वे भी कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं । प्रयोजन के अनुसार और असंस्कृत शब्द लिखने के समय ŕa और ŕha व्यवहार किया जा सकता है ।

गैर- संस्कृत शब्द लिखने के लिए दिए गए दश अतिरिक्त अक्षर

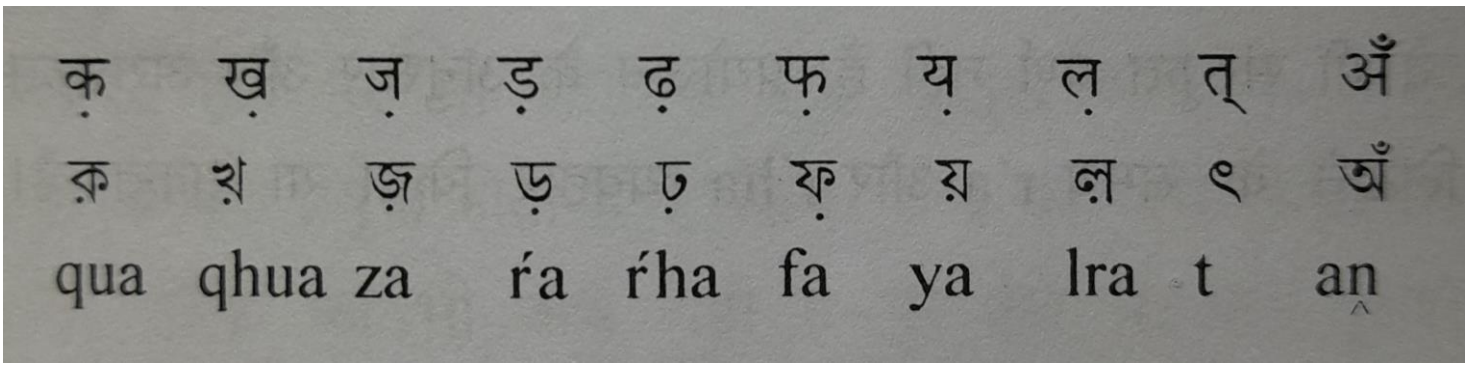

****

जिनको मैं प्यार करता था तथा आज भी प्यार करता हूँ उसी महान योद्धा सुभाष चन्द्र बसुको ।

****

काशकीय

प्रस्तुत पुस्तक ' आज की समस्याएँ ' नए कलेवर में पुनः प्रकाशित हुई । इसमें अन्तर्निहित विषय की युगोपयोगिता पूर्णरूपेण अक्षुण्ण है । सम्प्रति कुछ सुधी पाठकों ने इसकी भाषा में कहीं - कहीं प्राञ्जलता लाने के लिए तद्नुरूप अभिमत व्यक्त किया था । इसी प्ररिप्रेक्ष्य में प्रवीण विद्वान आचार्य प्रतापादित्य जी ने इस संस्करण में कहीं - कहीं भाषागत परिमार्जन किया है । केन्द्रिय प्रकाशन विभाग की ओर से उनके प्रति अशेष कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत पुस्तक विशेष रूप से समादृत होगी यह आशा करता हूँ ।

इति

प्रकाशक

आनन्दमार्ग आश्रम

तिलजला , कलिकाता – ३९

आज की समस्याएँ

परमपुरुष मेरे पिता हैं , परमा प्रकृति मेरी माँ है , और यह त्रिभुवन हमारा स्वदेश है । हम सभी विश्व नागरिक हैं ।

यह जगत ब्रह्म - मानस की कल्पना है और इस कल्पनाधारा की संचर - प्रतिसंचर क्रिया में ही वस्तु की सृष्टि , स्थिति और लयक्रिया निष्पन्न होती है । व्यक्तिगत भाव से जब मनुष्य किसी वस्तु की कल्पना करता है , उस समय उस वस्तु का वही मालिक है , कोई दूसरा नहीं । कल्पना - सृष्ट शस्य - क्षेत्र में कल्पना - सृष्ट मनुष्य जब घूमता है तब उस क्षेत्र का मालिक कल्पना - सृष्ट मनुष्य नहीं , वरन् कल्पना करने वाला मनुष्य है ।

जगत् ब्रह्म की कल्पना में सृष्ट होता है । इसीलिए इसका मालिकाना का हक केवल ब्रह्म ही का है , उनके कल्पना – सृष्ट जीव का नहीं । विश्व की स्थावर या अस्थावर सम्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की नहीं है । सभी कुछ सबों की पैतृक संपत्ति है । सबका पिता ब्रह्म है । दायभाग व्यवस्था के अनुरूप पिता के द्वारा शासित सम्मिलित परिवार की भाँति सभी जीव इस सम्पत्ति का केवल भोग ही कर सकता है ।

जीव को चाहिए कि सम्मिलित परिवार के सदस्यों जैसा साधारण सम्पत्ति या इजमाली सम्पत्ति की उपयुक्त भाव से रक्षा करें । उसे यथार्थ काम में लगावें , तथा ऐसी व्यवस्स्था करें जिससे सभी समान अधिकार के साथ खा – पीकर स्वस्थ शरीर और मन लेकर बढ़ सकें । सम्पूर्ण जीव – जगत् एक वृहत् यौथ (Joint) परिवार है । इस

बात को क्षण भर के लिये भी नहीं भूलना चाहिए । प्रकृति ने विश्व की किसी आंशिक सम्पत्ति को भी किसी व्यक्ति विशेष के नाम से लिख - पढ़ नहीं दिया है । व्यक्तिगत मालकियत की सृष्टि स्वार्थी सुअवसरवादी मनुष्यों ने किया है , क्योंकि वे इस प्रकार की व्यवस्था की दुर्बलता के कारण शोषण कर स्वयं अपनी धमनियाँ मोटा करने का अवसर पा जाते हैं । इस विश्व - ब्रह्माण्ड की सभी सम्पत्ति जब जीव मात्र की ही पैतृक सम्पत्ति है तो किसी के घर में प्राचुर्य का स्त्रोत हो और कोई अनाहार से तिल - तिल सुख कर मरे तो क्या इस व्यवस्था को धर्म - संगत कहा जा सकता है ?

यौथ परिवार का हरेक व्यक्ति अपनी क्षुधा या प्रयोजनानुसार अन्न - वस्त्र - शिक्षा - चिकित्सा या आराम की व्यवस्था , समग्र परिवार की आर्थिक संगति के अनुसार पाता है । किन्तु यदि परिवार का

कोई सदस्य अपने प्रयोजन के अतिरिक्त अन्न , वस्त्र , पुस्तक या औषधि को अपने जिम्मे रख ले तो उस परिवार के अन्य सदस्यों के लिए क्या यह कष्टकारी नहीं है ? इस व्यवस्था में उसका यह कार्य निश्चय ही धर्मविरोधी है , समाजविरोधी है ।

वर्तमान विश्व के पूँजीवादी लोग ठीक इसी प्रकार के धर्मविरोधी या समाजविरोधी जीव हैं । अपने घरों में अधिकाधिक वस्तु संगृहीत करने के लिये ये दूसरों को क्षुधा की ज्वाला से तड़पाते हैं । अपने पोशाक की तड़क - भड़क को प्रदर्शित करने के लिए , दूसरों को चीथड़ा पहनने को विवश करते हैं , अपनी प्राणशक्ति बढ़ाने के लिये दूसरों के प्राणरस का शोषण करते हैं ।

परिवार का एक सदस्य , जो अन्य दूसरे सदस्यों के साथ एकात्म की भावना नहीं रखता है अथवा वह यौथ अधिकार के महत् आदर्श तथा

युक्तिग्राही तथ्य को भी स्वीकार नहीं करना चाहता है , उस अवस्था में ऐसे सदस्य को सामाजिक प्राणी नहीं कहा जा सकता है । सहज आध्यात्मिक आदर्श के अनुसार व्यष्टिगत मालिकाना व्यवस्था को चरम तथा परम कहकर स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

२

जीवों के सामूहिक हित की दृष्टि से पूँजीवाद का नाश करना आवश्यक है । किन्तु इस उद्देश्यपूर्ति का तरीका किस प्रकार का होना चाहिए ? हिंसा हिंसा का प्रोत्साहन करती है इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । हिंसा का आश्रय नहीं लेकर , संशोधन के मनोभाव से शक्ति – सम्प्रयोग का फल अच्छा होगा ही ऐसी बात भी नहीं है । इस अवस्था में क्या करना उचित है ? अच्छी बातों को समझाकर या मानसिक आवेदन की सहायता लेकर

पूँजीवाद की समाप्ति यदि सम्भव हो तो उससे अच्छी बात हो ही नहीं सकती क्योंकि इससे इस वृहत् मानव परिवार की शान्ति पर चोट नहीं लगती है , किन्तु सभी इसके लिये मदद देंगे , इस बात को क्या ऐलानी तौर पर कहा जा सकता है ? कोई कह सकता है कि दीर्घ काल तक सुनते - सुनते या बूझते - बूझते तथा उपयुक्त आध्यात्मिक एवं मानसिक शिक्षा के फलस्वरूप शोषकों में भी सद्बुद्धि जाग्रत होगी । यह बात सुनने में बहुत अच्छी लगती है । इस प्रकार की चेष्टा भी निन्दनीय नहीं है । किन्तु शोषकों में सद्बुद्धि जाग्रत हो , इसके लिये अनन्त समय तक तो प्रतीक्षा करना उचित नहीं माना जा सकता । शोषित , जनसाधारण तो उस समय तक मर कर भूत बन जायगा ।

मानविक आवेदन कहीं - कहीं कारगर होने पर भी अधिकांश क्षेत्रों में काम नहीं देता है या

सफलीभूत होने में अधिक समय लेता है । इसीलिए आवश्यक क्षेत्रों में कठोर आचरण के द्वारा पूँजीवाद को अपनी सर्वग्रासी क्षुधा को त्याग करने के लिए बाध्य करना होगा । किन्तु इससे कार्य सम्पूर्ण होगां ऐसा नहीं कहा जा सकता है । कानून के भय से जो आपात दृष्टि में संयत हुए हैं वे भी अपनी वृत्तियों को चरितार्थ करने के लिए अन्य किसी दूसरी राह का अनुसरण करैगे । चोर बाजारी , मिलावटी वस्तु आदि के विक्रय को केवल धमकी दिखाकर या कानून का भय दिखाकर बन्द नहीं किया जा सकता है । इसके लिए आवश्यकतानुसार कठोरतर व्यवस्था करनी ही होगी या वैसी अवस्था का सृजन कर दबाब देना होगा । इस प्रकार का दबाब देने के लिए शक्ति - सम्प्रयोग (Violence) अवश्य ही करना होगा । शक्ति - सम्प्रयोग नहीं करना ही जिनके मतानुसार अहिंसा है उन्हें व्यर्थ होना ही होगा । इस प्रकार की

अहिंसा की नीति द्वारा पृथ्वी की किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा ।

३

बात - बात पर पूँजीवादियों पर जो कटूक्ति वर्षाया करते हैं उनके मनोभाव का मैं समर्थन नहीं कर सकता हूँ । क्योंकि ऐसे कार्यों के फलस्वरूप पूँजीवादियों को सतर्क हो जाने का मौका मिल जाता है और वे अधिकतर विज्ञानसम्मत तथा शठतापूर्ण भाव से जनसाधारण का शोषण करने की राह ढूँढ़ निकालते हैं । जिनके सामने कोई रचनात्मक आदर्श नहीं है , वे मीठी बातों से या धमकी दिखाकर अथवा परिस्थिति के दबाव आदि जिस किसी भी प्रकार से पूँजीवाद को ध्वस्त करने की चेष्टा क्यों न करें वे सफलीभूत नहीं हो पायेंगे । '

४

दूसरों का शोषण कर धनी बनने की आकांक्षा एक प्रकार की मानसिकं व्याधि है । वस्तुतः मानव – मन की अनन्त बुभुक्षा मानसिक अथवा आध्यात्मिक सम्पद में नियोजित होने का यथार्थ पथ नहीं पाने से जड़ जगत् में प्रयोजनातिरिक्त सम्पद आहरण कर दूसरों को वंचित करने के कार्य में लग जाती है ।

यौथ परिवार का कोई सदस्य यदि शारीरिक अथवा बौद्धिक शक्ति से भण्डार के खाद्य सामग्री को अपने पास रख लेता है तो वह दूसरों के क्लेश का कारण होता है । ठीक उसी प्रकार पूँजीवादी कहते हैं कि " हमलोग बुद्धि और परिश्रम के द्वारा ही सम्पद आहरण किए हैं । यदि दूसरों में बुद्धि या श्रमशीलता रहे तो वे लोग भी आहरण करें , रोकता कौन हैं ? " ये लोग यह समझना नहीं चाहते हैं कि पृथ्वी की

भोग्य वस्तु का परिमाण सीमित हैं , परन्तु प्रयोजन सभी को है । एक मनुष्य के प्राचुर्य से अधिकांश क्षेत्रों में दूसरों के ग्रासाच्छादन में कमी हो जाती है । दूसरों के इस प्रयोजन की बात को नहीं समझना ही व्याधि है । किन्तु इस व्याधि से जो ग्रस्त हैं वे भी वृहत् मानव परिवार के सदस्य हैं ; भाई हैं । अपितु , मानसिक आवेदन से अथबा अवस्था का चाप - सृष्ट करके उन लोगों की व्याधि दूर करनी ही होगी , उन लोगो के ध्वंस करने की भावना भी महापाप है ।

५

किन्तु अतिवादी व्यवस्था के रूप में जहाँ धमकी दिखाना या अवस्था का चाप - सृष्ट करना पड़ा है वहाँ कायमी स्वार्थवादियों का स्वभाव संशोधित हुआ , क्या ऐसा कहा जा सकता है ? वरन् वे लोग प्रति मुहूर्त प्रतिविप्लव सृष्ट करने का

सुयोग ढूढ़ते रहेंगे । जनसाधारण को शोषण के हाथों से बचाने के लिए आशु व्यवस्था के रूप में अवस्था की चाप - सृष्ट करनी ही होगी । किन्तु व्याधिग्रस्तों के स्वभाव संशोधन के लिए दीर्घकाल तक मानसिक तथा आध्यात्मिक व्यवस्था भी करनी होगी । मानसिक तथा आध्यात्मिक व्यवस्था की सहायता से यदि किसी के स्वभाव संशोधन होने में अनन्त काल भी लग जाय तो भी जीव समाज उसकी प्रतीक्षा के लिये राजी है , क्योंकि उनके विष - दन्त ट्ट चुके जायेंगे और अवस्था की चाप - सृष्टि कर उसके पूर्व ही उनकी शोषण क्षमता छीन ली गई होगी ।

६

कायमी स्वार्थ का एक और सुन्दर नमूना है , जाति - भेद प्रथा । विद्या बुद्धि के बल पर जो लोग एक समय शेष मनुष्यों के सिर पर चढ़ बैठे थे

उन्हीं लोगों के वंशधारों की दुहाई देकर एक श्रेणी के लोग आज भी समाज में अपनी प्रतिष्ठा तथा शोषण का सुयोग अव्याहत रखना चाहते हैं । विश्व के किसी भी प्राणी की उपेक्षा हमलोग नहीं कर सकते हैं ।

७

विश्व के किसी अंश विशेष की भी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । इसीलिए शिल्प - व्यवस्था में जहाँ तक सम्भव हो विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाना ही उचित है । विश्व से एक अंश का शिल्प उन्नयन अन्य अंश की दरिद्रता या बेकारी को अच्छी तरह से दूर नहीं कर सकता है । इसीलिए शिल्प व्यवस्था अन्ततः जीवन धारण के लिए अत्यावश्यक भोग्य वस्तु सम्पर्कित शिल्प अथवा कृषि कार्य में एक - एक कर स्वयं सम्पन्न यूनिट (unit) बना लेना ही उचित है , अन्यथा युद्ध - विग्रहादि के समय में

जनसाधारण को बिशेष दुःख कष्ट भोग करना पड़ता है । परिवहन (Transport) व्यवस्था की उन्नति के साथ ही साथ इन सब यूनिटों का आयतन बढ़ा दिया जा सकता

८

शिल्प क्षेत्र में वृहत् शिल्प (Large scale industry) तथा क्षुद्र शिल्प (Small scale industry) दोनों का प्रयोजन स्वीकार करना होगा । उदाहरण के लिए , एक स्वयं सम्पूर्ण यूनिट में वस्त्र बुनने के लिए , प्रयोजनीय सूत कई बड़े - बड़े सूत कल के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है । इस क्षेत्र में इस सूत उत्पादन को वृहत् शिल्प कहा जाय तो इसकी सहायता से अनेक छोटे - छोटे उद्योग पुष्ट होंगे । एक एक सूत - कल के केन्द्र कर यथेष्ट संख्यक वयन समवाय (weavers ' co - operative) बना लिया जा सकता है । वहाँ पर जुलाहे अपने घर में

रहकर ही वस्त्र बुनने का सुयोग पायेंगे । वृहत् शिल्प के आह्वान से उनलोगों को घर छोड़कर दूर नहीं जाना पड़ेगा । फिर भी सूत कल निकट रहने पर युद्ध काल में भी वयन शिल्प (weaving industry) क्षतिग्रस्त नहीं होगा ।

क्षुद्र और वृहत् दोनों प्रकार के शिल्प को स्वीकार करने का अर्थ पुराने ढंग के यन्त्रों को प्रोत्साहित करना नहीं है । विज्ञान की प्रगति के साथ - साथ उन्नत प्रकार के यन्त्रों का व्यवहार करना ही होगा । गड़ माहात्म्य का प्रचार कर मिल की चीनी का व्यवहार बन्द करने की चेष्टा अथवा खादी माहात्म्य प्रचार कर मिल के सूत के साथ प्रतियोगिता की प्रचेष्टा अर्थहीन है । हाँ , उन्नत यान्त्रिकीकरण की व्यवस्था तथा विज्ञानसंगत भाव से विकेन्द्रीकरण के कार्य जितने दिनों तक शुरू नहीं हो रहे हैं उतने दिनों तक गुड़ , खादी अथवा इस प्रकार

के शिल्प को अवश्य ही उत्साह देना चाहिए एवं ग्रामीण अर्थनीति में उनका भी एक स्थान है इसको स्वीकार कर लेना चाहिए ।

शिल्पायन (Industry) जहाँ मुनाफा लूटने के उद्देश्य से प्रणोदित है वहाँ पर विकेन्द्रीकरण की नीति का समर्थन नहीं होना ही स्वाभाविक है किन्तु शिल्पायन जहाँ प्रयोजन की पूर्ति के लिए किया गया है वहाँ पर विकेन्द्रीकरण के विरुद्ध कुछ बोलने का मौका नहीं रह जाता है ।

९

वस्तुतः उन्नत प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों का व्यवहार करने का अर्थ ही है द्रुत यान्त्रिकीकरण । प्राचीनपंथी लोग इस यान्त्रिकीकरण के विरुद्ध गला फाड़ कर चिल्लाते हैं । वास्तविकता यह है कि पूँजीवादी अर्थनैतिक व्यवस्था में किए गए

यान्त्रिकीकरण का अर्थ है जनसाधारण के लिए अधिक दुःख , अधिक बेकारी । इसीलिए प्राचीनपंथी लोग इसके विरोधी हैं । पूँजीवाद को बिना क्षति पहुँचाये तथाकथित जनकल्याण करने पर यान्त्रिकीकरण की विरोधिता करनी ही होगी क्योंकि यन्त्र की उत्पादिका शक्ति दुगुना बढ़ जाने से मानव शक्ति का प्रयोजन ठीक आधा कम हो जायेगा और इसीलिए पूँजीवादी लोग उस समय व्यापक भाव में कारखाने से श्रमिकों की छँटाई करेगे । किञ्चित आशावादी कह सकते हैं , " अवस्था के दबाब पड़ने से मनुष्य उद्भूत श्रमिक दल को भिन्न कार्य में नियोग करने का उपाय ढूँढ़कर निकाल लेंगे और इस उपाय के ढूँढ़ने की प्रचेष्टा ही वैज्ञानिक प्रगति को त्वरित कर देगी । इसीलिए पूँजीवादी व्यवस्था में यान्त्रिकीकरण का फल असल में अच्छा ही है । " यह मत बेकार नहीं होने पर भी वास्तविक नहीं है

क्योंकि द्रुतयान्त्रिकीकरण फलस्वरूप जितना जल्द मानव श्रम उद्वृत्त में परिणत होता है उतना जल्द उनलोगों को कार्य में नियोग करने की व्यवस्था सम्भव नहीं होती है । उद्घृत्त श्रमजीवी अनाहार और दरिद्रता के फलस्वरूप तिल – तिल कर ध्वस्त हो जाते हैं । उन लोगों में कुछ चोरी , डकैती , दुश्चरित्रता तथा विभिन्न प्रकार के समाज विरोधी कार्य की सहायता से अपने को बचाकर रखने की चेष्टा करते हैं । यह अवस्था निश्चय वाँछनीय नहीं है । किन्तु सामूहिक अर्थनैतिक व्यवस्था में इस प्रकार की प्रतिक्रिया होने का अवसर नहीं हैं । वहाँ पर यांत्रिकीकरण का अर्थ होगा श्रम कम , आराम ज्यादा । यन्त्र की उत्पादिका शक्ति दुगुना हो जाने से श्रमिकों का कार्य – काल (Working hour) आधा हो जायगा । अवश्य ही कार्य काल में कमी

भोग्य वस्तु की चाह तथा श्रम शक्ति को दृष्टि में रखकर ही करना होगा ।

विज्ञान के शुभ प्रयोग के द्वारा सामूहिक अर्थनैतिक व्यवस्था में मनुष्य का कल्याण होगा ही । यह भी हो सकता है कि यान्त्रिकीकरण के फलस्वरूप सप्ताह में पाच मिनट से ज्यादा मिहनत किसी को भी नहीं करनी पड़े । अन्न , वस्त्र की चिन्ता में सर्वदा व्यस्त नहीं रहने पर उनके मानस तथा अध्यात्म सम्पद का अपचय नहीं होगा । खेल कूद , साहित्य चर्चा तथा अध्यात्म साधना में वे ज्यादा समय लगा सकेंगे ।

श्रमजीवियों के स्वार्थ संरक्षणा के लिए ट्रेड यूनियन आन्दोलन का प्रयोजन अनिवार्य है और यह आन्दोलन ठीक तरह से चल सके उसके लिए उपयुक्त व्यवस्था की आवश्यकता है । साधारणतः देखा जाता है कि इस आंदोलन के नेतृत्व ग्रहण करने बाले श्रमजीवियों को उनकी माँग तथा अधिकार के सम्बन्ध में जितनी सचेतनता लाना चाहते हैं उस अनुपात में वे लोग उन लोगों के दायित्व के सम्बन्ध में सचेतन करने का कुछ भी प्रयास नहीं करते । तज्जन्य अव्यवस्था को दूर करने का प्रकृष्ट उपाय है कि शिल्प तथा व्यवसाय प्रतिष्ठान परिचालन में कर्मियों का अधिकार स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लेना । इस दिशा में केवल आदर्शवाद का प्रचार करने अथवा अधिक नीतिकथा सुनाने से विशेष कुछ लाभ होने को नहीं है । ट्रेड यूनियन आंदोलन समूह की एक और बड़ी त्रुटि यह है कि इसका नेतृत्व एक

सच्चे श्रमजीवी वा कर्मी के हाथों में नहीं रहता । राजनीतिक नेता लोग हर समय ही दलीय उद्देश्य लेकर इसमें दलाली करने आते हैं । इनका लक्ष्य होता है दलीय स्वार्थ सिद्धि की ओर श्रमिक कल्याण की ओर नहीं ।

११

शिल्प , कृषि और बाणिज्य जितना सम्भव हो सकें , समवाय प्रतिष्ठान के माध्यम से ही परिचालित होना चाहिए । इसके लिये प्रयोजनानुसार समवाय संस्थाओं को विशेष - विशेष प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करनी होगी । रक्षाकवच की व्यवस्था करनी होगी और धीरे धीरे विशेष - विशेष प्रकार की कृषि , शिल्प तथा बाणिज्य क्षेत्र से व्यक्तिगत

मालकियत या व्यक्तिगत परिचालना की व्यवस्था हटा देनी होगी ।

अति क्षुद्र (Small Scale Industry) वा क्षुद्रत्व - जन्य जटिलताओं के कारण जिन संस्थाओं को सामवायिक भित्ति पर चलाना असुविधाजनक हैं केवल उन्हीं संस्थाओं को व्यक्तिगत परिचालना पर छोड़ दिया जा सकता है । ठीक उसी प्रकार अतिरिक्त वृहत् अथवा वृहत् तथा इसकी जटिलताओं के कारण जिन संस्थाओं को सामवायिक भित्ति पर चलाना असुविधाजनक है उन सबों का भार स्थानीय राज्य सरकार (जहाँ संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था है) अथवा स्थानीय लोक संस्था (जहाँ पर संयुक्त राष्ट्रीय व्यवस्था नहीं है) ले सकती है । केन्द्रीय सरकार या विश्व राष्ट्रीय सरकार (विश्व राष्ट्र के प्रतिष्ठित होने पर) के हाथों में शिल्प , कृषि तथा बाणिज्य की परिचालना नहीं रहना ही वांछनीय है ;

क्योंकि उस हालत में उक्त संस्थाओं की परिचालना के विषय में जनसाधारण का प्रत्यक्ष सुयोग तो रहेगा ही नहीं , परोक्ष सुयोग भी नहीं रह पायेगा । फलस्वरूप पूँजीवादियों सुविधावादी अथवा मतलबी राजनीतिक लोग सहज ही में उन सबों को हथिया ले सकते हैं और जनसाधारण के अर्थ का दुरूपयोग कर सकते हैं ।

१२

मनुष्य के प्रत्येक कर्म में मानवीयता का स्पर्श रहना उचित है । जिनमें किसी को वंचित करने का मनोभाव नहीं है वे इसीलिए न्यायतः तथा धर्मतः सम्पत्ति की व्यक्तिगत मालकियत स्वीकार नहीं कर सकते हैं । वर्तमान विश्व का अर्थनैतिक ढाँचा जैसा भी हो मानवीय अधिकार की भित्ति पर प्रतिष्ठित

नहीं है । मानविक अधिकार को स्वीकार करने से ही विप्लवात्मक परिवर्तन के लिए प्रस्तुत रहना होगा और इस परिवर्तन का स्वागत भी करना होगा । भू - सम्पत्ति , शिल्प , बाणिज्य सभी कुछ का साधारणीकरण इस विप्लव का एक अति वृहत् अंग है । यहां पर राष्ट्रीयकरण शब्द का व्यवहार मैंने इच्छा पूर्वक नहीं किया है । जमीन का मालिक जमींदार नहीं , कारखाना का मालिक तथाकथित शिल्पपति भी नहीं है । ये बातें उतनी ही सत्य हैं जितनी कि " जिनका हल उनकी जमीन " , " " जिनकी हथौड़ी उनका कारखाना " वे बातें असत्य है । विश्व की सभी सम्पत्तियों का मालिक विश्व का जनसाधारण है , इसीलिए साधारणीकरण शब्द का प्रयोग किया हैं ।

जो इस व्यक्तिगत मालकियत व्यवस्था को हटाने के पक्षपाती हैं उनमें से कतिपय का ख्याल है

कि उपयुक्त क्षतिपूर्ति (मुआवजा) देकर ही जमीन - जायदाद , कल - कारखाना तथा व्यवसाय प्रतिष्ठान दखल करना उचित है । और कुछ लोगों का ख्याल है कि उन प्रतिष्ठानों के मालिक पूँजीपति ने आजतक यथेष्ट शोषण किया है , अतः : क्षतिपूर्ति के लिए रूपया देते रहने से जनसाधारण का द्रुत कल्याण विधान सम्भव नहीं है— यह भी कठोर सत्य है । अतएव मूल्य देकर पूँजीवादियों की सम्पत्ति खरीदने का प्रस्ताव समर्थन नहीं किया जा सकता है । किन्तु यह बांत भी तो सही है कि उन सब सम्पत्तियों का मालिक सर्वक्षेत्र में तो स्वस्थ , सबल या धनी नहीं है । मान लीजिए ऐसे एक सम्पति की मालकिन एक असहाय विधवा थी एक अति वृद्ध पंगु थे ऐसी दशा में इन लोगों के लिए पेंशन की व्यवस्था करना निश्चय ही उचित है । सम्पत्ति का मालिक यदि नावालिग हो तो उसके

भरण - पोषण तथा शिक्षा के लिए स्टाइपेन्ड (Stipend) अवश्य ही देना पड़ेगा । मालिक यदि स्वस्थ , सबल पुरुष भी हो और१ उस स्थिति में भी यदि अर्थोपार्जन का दूसरा कोई रास्ता नहीं रह जाय तो उसकी योग्यता तथा सामर्थ्यानुसार अर्थोपार्जन का सुयोग भी उनके लिए कर देना होगा । यही मानवोचित व्यवस्था है ।

१३

समाज के विभिन्न प्रकार के पापाचार को देखकर जो लोग सिहर उठे हैं और कहते हैं " गया , गया , सब कुछ गया , धर्म गया , नीति गई , सर्वनाश हो गया " , उन लोगों को समझाना चाहिए कि इस तथाकथित " सर्वनाश " के पीछे जो कारण है उनमें से एक प्रधान कारण है सामाजिक अविचार ।

सामाजिक अधिकारगत विषयों में नारी के प्रति अविचार किया जाता है और अर्थनैतिक दिशा में भी नारी पङ्गु होकर रहती है , इस कारण से ही नारी समाज का एक अंश गणिकावृत्ति (Prostitution) ग्रहण करने के लिए बाध्य होता है । गणिका - वृत्ति के अनेक कारण होने पर भी ये दो मुख्य कारण है । आनन्दमार्ग ने नारियों को भी पुरुष के समान ही मर्यादा - सम्पन्न मनुष्य के रूप में मान लिया है । अर्थनैतिक क्षेत्र में नारी को पुरुष के ऊपर निर्भरशीला होकर नहीं रहना पड़े इस उद्देश्य से आनन्द मार्ग उन्हें उत्साहित करता है । दुश्चरित्र पुरुष छाती फुलाकर समाज में रहेगा और पतिता नारी को समाज में सद्भाव से जीवन - यापन करने की इच्छा रहने पर भी सुयोग नहीं मिले - यह व्यवस्था न्यायानुमोदित नहीं है । सद्भाव से जीवन -

यापन की इच्छुक नारी को ससम्मान समाज में स्थान देना होगा ।

१४

दहेज प्रथा सामाजिक अविचार का एक और ज्वलन्त उदाहरण है । " मानव समाज " नामक पुस्तक में मै कह चुका हूँ कि दहेज के मुख्यतः दो कारण हैं । पहला अर्थनैतिक , दूसरा नारी - पुरुष का संख्यागत तारतम्य । आर्थिक व्यवस्था से नारी की पुरुष पर निर्भरशीलता कम हो जाने के साथ - ही - साथ दहेज प्रथा की उग्रता नहीं रहेगी । किन्तु इस कार्य को त्वरान्वित करने के लिये तरुण - तरुणियों के बीच उन्नत आदर्शवाद का प्रचार करने की भी आवश्यकता है । हम लोगों के लड़के - लड़कियाँ चावल - दाल , नमक- तेल , तथा गाय

बकरी जैसी नहीं है जो कि उन लोगों को लेकर हाट बाजार में मोल जोल किया जाय ।

१५

आज विश्व में ' शांति ' , ' शास्ति ' चिल्लाना एक रिवाज हो गयी है । किन्तु ऐसी चिल्लाहट से क्या कोई काम हो सकता हैं ? जिन कारणों से शांति में विघ्न उत्पन्न होता है उन कारणों के विरुद्ध संग्राम के सिवाय शांति की प्रतिष्ठा का दूसरा कोई मार्ग नहीं है । व्यक्तिगत जीवन में प्रत्येक मनुष्य में ही शुभ और अशुभ बुद्धि तथा विद्या और अविद्या का चल रहा है । कभी विद्या जयी होती है तो कभी अविद्या की जय होती है । सामाजिक जीवन में भी इसी प्रकार विद्या और अविद्या का संग्राम चल रहा है । अविद्या के विरुद्ध

विद्या की लड़ाई करनी होती है और इस लड़ाई में जब या जब तक विद्या जयी बनकर रहती है तब तक एक विशेष प्रकार की शांति रहती हैं जिसे सात्त्विकी शांति कह सकते हैं । ठीक उसी प्रकार इस लड़ाई में जब अथवा जब तक अविद्या जयी वनकर रहती है उस वक्त भी एक विशेष प्रकार की शान्ति रह जाती है । जिसे तामसी शांति कह सकते हैं । अतः देखते हैं कि शांति एक प्रकार का आपेक्षिक तत्त्व है । परमाशांति तथा शाश्वती शांति सामूहिक जीवन में आ ही नहीं सकती है क्योंकि यह सृष्ट जगत , जिस संचर तथा प्रतिसंचर क्रिया में विधृत है , उनमें प्रथम अविद्या प्रधाना है और द्वितीय विद्या प्रधाना है । दोनों के अस्तित्व ही में जब जगत का अस्तित्व है तब विश्व में स्थायी शांति का अर्थ (स्थायी तामसी या स्थायी सात्त्विकी शांति में से जो भी हो) विद्या या

अविद्या अथवा दोनों की अक्रियता होगी । इसलिए कहना पड़ता है कि विश्व – ब्रह्माण्ड में सामूहिक शांति एकमात्र सामग्रिक प्रलय छोड़कर और किसी भी अवस्था में नहीं आ सकती हैं और इस सामग्रिक प्रलय की कल्पना युक्ति – विरोधी है । व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य अवश्य ही साधना के द्वारा परमाशान्ति लाभ कर सकता है , और जागतिक बिचार से उस अवस्था को व्यष्टि जीवन का प्रलय कहा जा सकता है । सरकारी कर्मचारी जहाँ दृढ़चेता है वहाँ पर समाज – विरोधी तामसिक व्यक्ति सिर नीचे किये रहते हैं । उस समय देश में एक विशेष प्रकार की शांति रहती है , इसे सात्त्विकी शांति कहते हैं । सरकारी कर्मचारी जहाँ दुर्बल है देश में उस समय तामसिक व्यक्तियों का बोलवाला रहता है , सत् व्यक्ति सिर नीचा किये रहते हैं । यह भी एक प्रकार की शांति की अवस्था है , इसे तामसी

शांति कह सकते हैं । यह तामसी शान्ति अवश्य ही काम्य नहीं है । एक विशेष अंचल की विशेष मानव गोष्ठी यदि उस अंचल तथा वहिस्थ किसी दूसरे अंचल की अन्य किसी मानव गोष्ठी पर अत्याचार अथवा हमला करती है और उस अवस्था में अन्यान्य मनुष्य यदि निर्वाक् होकर देखते रहें अथवा आलोचना , समझौता या आपोष रफा को ही एकमात्र रास्ता समझ लें , तो समझना चाहिए कि वे तामसी शांति को ही प्रश्रय दे रहे हैं ।

किसी व्यक्ति का पड़ोसियों के साथ यदि खूब सद्भाव रहे , किन्तु यदि यह देखा जाय कि वह अपनी पत्नी की हत्या करने जा रही है तो उस समय अन्यान्य पड़ोसियों का क्या कर्त्तव्य होता है ? क्या वे इसको एक पारिवारिक घटना समझकर मुँह बन्द कर या हाथ समेट कर बैठे रहेंगे ? और उस नारी की मृत्यु का पथ सुगम कर तामसी शांति

की प्रतिष्ठा में सहयोग देंगे ? नहीं , मानव धर्म इस बात का समर्थन नहीं करता । उनलोगों को उचित है कि दरवाजा तोड़ , उनके गृह में प्रबेश कर उस नारी की रक्षा करना और उस अत्याचारी . पुरुष के विरुद्ध उपयुक्त व्यवस्था कर सात्त्विकी शांति की प्रतिष्ठा में सहयोग देना । यदि कोई देश अपने अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करे या अपने दुर्बल पड़ोसियों पर हमला करे तो अन्यान्य पड़ोसियों को प्रयोजनानुसार बलपूर्वक अत्याचारी को निरस्त्र कर सात्त्विकी शांति की प्रतिष्ठा के लिए आगे बढ़ना ही उचित है । इसीलिए सात्त्विकी शांति की जो प्रतिष्ठा करना चाहते हैं उन लोगों को शक्ति की साधना करनी ही होगी । बकरी से व्याघ्र के समाज में सात्त्विकी शांति की प्रतिष्ठा करना सम्भव नहीं हैं । जिन लोगों के मतानुसार अहिंसा का अर्थ शक्ति का असम्प्रयोग ही है , दुख के साथ कहना पड़ता है कि

उन लोगों के द्वारा सात्त्विकी शांति की प्रतिष्ठा या अर्जित स्वाधीनता की रक्षा , दोनों में से कोई भी संभव नहीं है । उन लोगों की अहिंसा में धोखेबाजी रह सकती है , अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए कूटनैतिक प्रचेष्टा भी रह सकती है , किन्तु उन लोगों से सात्त्विकी शांति की प्रतिष्ठा नहीं होगी ।

१६

विश्व - ब्रह्माण्ड का प्रत्येक अणु - परमाणु भी सब जीवों की सामूहिक संपत्ति है । नीतिगत भाव से यह मान लेना होगा और उसे स्वीकार करने के बाद यह देशी है , यह विदेशी , अमुक व्यक्ति का अमुक देश के नागरिक होने की योग्यता है और अमुक को नहीं अथवा कम अधिकार रहेगा अथवा नहीं रहेगा , इस तरह की बातें टिक नहीं सकतीं । वस्तुतः ऐसी

भ्रांतिपूर्ण बार्तो में उत्कट रूप से कायमी स्वार्थ (Vested interest) ही दिखाई देता है । एक देश के मनुष्य जमीन के अभाव में अथवा खाद्य के अभाव में कष्ट सहन करें , दूसरे के मनुष्य के पास काफी परती जमीन अथवा काफी खाद्य रहे , इस प्रकार की अवस्था को पूँजीवाद के सिवा और क्या कहा जाय ? जन्मगत भाव से सभी मनुष्य विश्व के नागरिक हैं । सभी को सब जगह जाने की , और मनुष्य की तरह खा - पीकर जीवन बसर करने का अधिकार है । यदि किसी देश की कोई मानव गोष्ठी जीवों के ये मौलिक अधिकार भी मानने को राजी नहीं है तो समझना होगा कि उनके मुख से " शांति , शांति ' ' की आवाज सिर्फ लोगों को ठगने और धोखा देने के सिवा और कुछ नहीं हैं । केवल यही छोटी दुनिया नहीं , विश्व - ब्रह्माण्ड का प्रत्येक ग्रह - उपग्रह , नक्षत्र , उल्का , नीहारिका सर्वत्र ही

मनुष्य का घर है । यदि कोई मनुष्य को उसके इस जन्मगत अधिकार से भी वंचित कर रखना चाहता है , तब मनुष्य को अपने शक्तिबल से अपने इस अधिकार की प्रतिष्ठा करनी ही होगी । " सब देशे मोर देश आछे , आमि सेइ देश लबो युजिया । " (सभी देश हमारा देश है , हम उन देशों में अपना वासस्थान स्वंय निर्धारित करेंगे ।)

१७

सामाजिक दृष्टि का अभाव ही अधिकांश अनर्थो का मूल सबल मनुष्य दुर्बल मनुष्यों के ऊपर अत्याचार कर रहे हैं । सबल मानव - गोष्ठी दुर्बल मानव - गोष्ठी का शोषण कर रही है । ऐसी अवस्था में सत् मनुष्यमात्र का ही अन्यायियों के विरुद्ध लड़ाई करना कर्तव्य है । नैतिक उपदेशों द्वारा

ही काम होगा , इस आशा में अनन्तकाल तक चुपचाप बैठने से काम नहीं चलेगा । इसलिए सत् व्यक्तियों को भी संघ - वद्ध होना ही होगा । दानव के विरुद्ध लड़ाई के लिए तैयारी करनी ही होगी । सामूहिक जीवन के ऊपर अथवा किसी मानव - गोष्ठी के ऊपर जो लोग जुल्म करते आते हैं , उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता है । ऐसी अवस्था में क्षमा करना केवल दुर्बलता ही नहीं वरन् इससे अन्याय को भी आश्रय मिलता है । अन्यायी और भी बेपरवाह तथा उद्दण्ड बन जाते हैं । व्यक्तिगत जीवन में किसी निर्दोष व्यक्ति के ऊपर कोई असाधु व्यक्ति यदि जोर - जुल्म करता हैं , ऐसी दशा में यह निर्दोष व्यक्ति अपनी सहन शक्ति की परीक्षा के लिए अथवा अन्य किसी कारण से उस असाधु जुल्मी को अपनी इच्छा से क्षमा भी कर सकता है किन्तु यदि यह जुल्मी किसी मानव - गोष्ठी के ऊपर

अत्याचार करता है तब तो ऐसी हालत में इस गोष्ठी के प्रतिनिधि के रूप में कोई व्यक्ति विशेष इस अन्यायी को क्षमा नहीं कर सकता है , क्षमा करने का अधिकार उनका है भी नहीं । वे यदि अपने अधिकार के बाहर काम करते हैं , तब ऐसी दशा में वे जिसका प्रतिनिधित्व करते हैं वे ही उनको धिक्कार देंगे । इसीलिए कहना पड़ता हैं कि क्षमा व्यक्तिगत जीवन की साधना है , सामूहिक जीवन की नहीं ।

१८

व्यक्तिगत जीवन में मनुष्य का मन जितना ही उदार या परिव्याप्त होता है , उतना ही वह उपजातीयता , साम्प्रदायिकता , प्रादेशिकता आदि मनोभावों से ऊपर उठता रहता है । अनेक लोगों को ऐसा कहते हुए सुनता हूँ कि राष्ट्रीवाद (nationalism

) बड़ी अच्छी चीज है , इसमें तो कोई संकीर्णता भी नहीं है । किन्तु क्या यह बात ठीक है ? असल में उपजातीयता , साम्प्रदायिकता , या प्रादेशिकता की तरह राष्ट्रीयता भी एक आपेक्षिक तत्त्व है । कहीं इसका मूल्य उपजांतीयता , साम्प्रदायिकता या प्रादेशिकता से अधिक है , कहीं कम । दृष्टान्त स्वरूप पोर्तुगीज राष्ट्रीवाद की बात लो । किसी राष्ट्रवादी पीर्तुगीज का मानस - विषय जितना बड़ा है अर्थात् जितने मनुष्य की कल्याण की कामना में वे रत हैं उस तुलना में किसी साम्प्रदायिकतावादी मुसलमान का मानस विषय वृहत्तर है क्योंकि वे अपेक्षाकृत अधिक मनुष्यों के कल्याण - कामी हैं । कारण , दुनिया में पोर्तुगीजों की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या अधिक है । ऐसी अवस्था में कोई राष्ट्रवादी पोर्तुगीज के साथ तुलनात्मक विचार करके सम्प्रदायवादी मुसलमानों के मनोभावों की निश्चय ही

निन्दा नहीं कर सकता है । इसी प्रकार कोई राष्ट्रवादी पोर्तुगीज से किसी जातिवादी (casteist) राजपूत का मनोभाव अधिक उदार है , यह मान लेना होगा क्योंकि उसमें अधिक मनुष्यों के कल्याण का बीज निहित है । राष्ट्रवादी पोर्तुगीज से किसी प्रादेशिकतावादी आन्धवासियों का मनोभाव व्यापक समझना होगा । अगर कोई व्यक्ति साढ़े सात करोड़ बंगालियों को लेकर प्रादेशिकता को प्रश्रय दे , तब उनका जातियतावादी मनोभाव दुनियाँ के अधिकांश राष्ट्रों (Nation) को (दुनियाँ के अधिकांश नेशन की जनसंख्या बंगालियों से कम है) राष्ट्रीयतावादी मनोभावों से अधिक उन्नत है , यह मानना होगा ।अतः देखा जाता है कि जातिवाद (casteism) सम्प्रदायवाद , प्रादेशिकतावाद या राष्ट्रीयतावाद (Nationalism) सभी एक ही प्रकार की चीजें हैं । जो जिसको लेकर बाजार गर्म किए बैठा है , वह

उसी पक्ष की ढोल पीटता है । वस्तुतः इसमें से प्रत्येक में ही इज्म (ism) का दोष है तथा संकीर्णता , हिंसा , द्वेष और नीचता आदि भी पूरी मात्रा में है । मेरा तुम्हारा भेद रखकर जो जन कल्याण में हाथ लगाता है वह अपने कामों के द्वारा मानव समाज के बीच भेद - बुद्धि का दरार उत्पन्न करता हैं । जीव मात्र को ही भेद - बुद्धि के ऊर्ध्व रहकर जीव के रूप में देखकर जो उनका कल्याण करना चाहते हैं उनके लिए विश्वैकतावाद (universalism) को ही मन - प्राण से ग्रहण करने के सिवा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है । विश्वैकतावाद के साथ वाद या इज्म विशेष लगाना उचित नहीं , क्योंकि इसमें इज्म का कोई लक्षण नही है । सब कुछ ही अपना है , समझ कर ग्रहण करने से मेरा - तेरा का प्रश्न ही नहीं रह जाता ।

अतः इसमें हिंसा , द्वेष तथा संकीर्णता का अवकाश ही नहीं रहता ।

१९

समय ज्यों - ज्यों आगे बढ़ती है , मनुष्यों के लिए जातिवाद , प्रादेशिकतावाद , सम्प्रदायवाद या राष्ट्रीयतावाद (Nationalism) का रंग उतना ही फीका होता जाता है । आज के मनुष्यों को समझना होगा कि निकट भविष्य में उनकों विश्वैकतावाद ग्रहण करना ही होगा । समाज का कल्याण चाहने वालों को इसलिए साम्प्रदायिक या राष्ट्रीयतावादी (Nationalist) संस्था बनाने की कल्पना छोड़कर अपनी सारी शक्ति और बुद्धि विश्व संस्था के गठन की प्रचेष्टा में लगा देनी होगी । कूटनीति और धोखेदार भाषणों को छोड़कर सरल भाव से रचनात्मक कामों में आत्मनियोग करना होगा ।

अनेक लोग कहते हैं कि राष्ट्रीय स्वार्थ समूह विश्व राष्ट्र गठन के लिए एकमात्र बाधा है । मैं कहता हूँ यही एकमात्र बाधा तो नहीं है । वरन् यह तो एक गौण बाधा है । वस्तुतः असली कारण यह है कि स्थानीय नेताओं का इससे नेतृत्व खो जाने का भय रहता । विभिन्न देशों और समाज में तथा राष्ट्रजीवन में आज जो उन सबों का प्रचंड प्रताप है , विश्व राष्ट्र की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद वह प्रताप नहीं रह सकता है ।

विभिन्न राष्ट्रीय स्वार्थ तथा जनसाधारण का सन्देह विश्व के गठन में बाधा पहुँचा सकता है । मनुष्यों के मन का अकारण भय दूर करने के लिए इस काम में धीरे धीरे आगे बढ़ना होगा और इसकी सम्भाव्य वाधाओं को दूर करने के लिए खुले मन से विचार करना होगा । विश्व राष्ट्र की हठात् नहीं , वरन् धीरे धीरे शक्तिमान कर ऊपर उठाना होगा ।

जैसे , मान लो , इसकी परिचालना के लिए , अनिर्दिष्ट काल के लिए दो परिषद रखे जा सकते हैं । निम्नतन परिषद में विश्व के विभिन्न स्थानों से जनसंख्या के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधि होंगे । ऊर्ध्वतन परिषद के सदस्यों का चुनाव देशों के आधार पर होगा । इससे यह सुविधा होगी कि जनसंख्या कम होने के कारण जो सब देश निम्नतन परिषद् में एक भी सदस्य नहीं भेज सकेंगे , वे ऊर्ध्वतन परिषद् में सदस्य भेजकर दुनिया के लोगों के सामने अपना पक्ष रख सकेंगे । निम्नतन परिषद् में गृहीत नहीं होने से ऊर्ध्वतन परिषद् किसी प्रस्ताव को ग्रहण नहीं कर सकेंगे किन्तु निम्नतन परिषद् के सिद्धांत को रद्द करने का सुरक्षित अधिकार उनको रहेगा ।

निर्माण के दौर में यह विश्वराष्ट्र केवल कानून बनाने वाली संस्था के रूप में कार्य कर सकता है ।

किसी नियम विशेष का किसी विशेष अंचल में सामयिक भाव से प्रयोग या अप्रयोग करने का अधिकार इसी विश्वराष्ट्र को होगा । विश्वराष्ट्र की प्रतिष्ठा के प्रारम्भिक स्तर में विभिन्न देशों के राष्ट्रों के हाथों में केवल शासनतांत्रिक (Administrative) क्षमता ही रहेगी । कानून बनाने की क्षमता हाथ में नहीं रहने के कारण उनके लिए अपनी मन मर्जी किसी भाषागत , ' रेलिजनगत या राजनीतिगत लघुसंख्यकों के ऊपर जुल्म चलाना आसान बात नहीं होगी ।

२०

यांत्रिक प्रगति के साथ साथ देश एवं काल के ऊपर मनुष्य का आधिपत्य क्रमशः बढ़ता जायगा । इसलिए विश्वराष्ट्र की आवश्यकता भी मनुष्य अपने अपने मर्म में अनुभब करेगा) क्रमशः मनुष्य की

विश्व के विभिन्न अंचलों के मनुष्यों से अधिक परिमाण में मिलना जुलना होगा और इसी मिलने जुलने में एक दूसरे को अच्छी तरह समझने समझाने की चेष्टा भी होगी ही । मनुष्य जाति की अजस्र भाषाएँ है । प्रत्येक भाषा ही हमारी भाषा है— हम सबों की भाषा हैं । मेरी भाषा , तुम्हारी भाषा या देशी भाषा , विदेशी भाषा , इस तरह के मनोभाव अत्यन्त त्रुटिपूर्ण हैं । इतना ही कहा जा सकता है कि हमलोगों की अनेक भाषाएँ हैं किन्तु उनमें एक या कई भाषाओं में मैं अपने को व्यक्त कर सकता हूँ ।

मर्यादागत विचार से विश्व की प्रत्येक भाषा समान होने पर भी विश्व के विभिन्न अंचलों के लोगों में पारस्परिक भाव विनिमय की सुविधा के लिए मनुष्य को एक साधारण भाषा चुन लेनी होगी । संपूर्ण खुले मन से विश्व में सर्वत्र जिस भाषा का

प्रचार है उसी प्रकार की एक भाषा को विश्वभाषा रूप में ग्रहण करना ही होगा । १ ९ जब तक विश्वराष्ट्र समग्र विश्व के ऊपर पूरा - पूरा राष्ट्रगत अधिकार नहीं पाता हैं तब तक विश्व के विभिन्न स्थानीय राष्ट्र अपनी सुविधा के अनुसार इसी विश्वभाषा को या किसी स्थानीय भाषा को अपनी सरकारी भाषा के रूप में ग्रहण कर सकते हैं । जो राष्ट्र सरकारी भाषा के रूप में जिस भाषा को ही ग्रहण क्यों न करें परन्तु विश्व भाषा के पठन - पाठन में कहीं भी किसी तरह की शिथिलता दिखलानी उचित नहीं होगी । हम किसी भी हालत में बाकी दुनियाँ से सम्पर्क - त्याग कर कूपमण्डूक होकर नहीं बैठ सकते । राष्ट्रीयतावाद (Nationalism) के नाम पर विश्व के अन्य भाई - बहनों से दूर रहकर अन्धकार में माथा फोड़ कर मर नहीं सकते ।

वर्तमान काल में अंग्रेजी के विश्वभाषा होने पर भी सभी भाषाओं की जन्म और मृत्यु का नियम रहने के कारण अनन्त काल के लिए अंग्रेजी ही विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित रहेगी , ऐसा नहीं कहा जा सकता । जिस युग में विश्वजनों में जिस भाषा का अधिक प्रचार दिखाई देगा , उस युग में उस भाषा को ही विश्वभाषा मान लेनी होगी ।

२१

विश्वजनों की साधारण सुविधा के लिए एक विश्वभाषा की आवश्यकता जितनी है , उस तुलना में एक साधारण विश्वलिपि की आवश्यकता नहीं है । हाँ , दुनियाँ की विभिन्न भाषाओं को एक ही लिपि में लिखने से भाषा शिक्षा में कुछ सुविधा अवश्य ही होगी , यह बात मान लेनी होगी । संसार की

प्रचलित लिपियों में रोमन लिपि ही सबसे अधिक विज्ञान सम्मत है । किन्तु , प्रचलित समस्त भाषाओं में इस लिपि को व्यवहार करने से कुछ वास्तविक असुविधाएँ दिखाई पड़ेगी । इसके अलावे स्थानीय लिपियों के प्रति मनुष्य की एक दुर्बलता भी रहती है । मेरा विचार है कि विभिन्न भाषाओं में रोमन लिपि को ग्रहण करना या नहीं करना उस भाषा - भाषी जनगोष्ठी के ऊपर छोड़ ही देना अच्छा होगा । फिर भी विश्वलिपि के रूप में रोमन लिपि को जितना अधिक लोग पहचान लेंगे उतना ही अच्छा है ।

जिस युग में जो भाषा विश्वभाषा रहेगी उस युग में उसी भाषा में प्रचलित लिपि को ही विश्वलिपि की मान्यता देनी होगी , ऐसी कोई बात नहीं है , वरन् जिस युग में जो लिपि सबसे अधिक विज्ञानसम्मत नी जायगी वह विश्वलिपि होगी और

तत्कालीन विश्वभाषा का पठन - पाठन उसी विश्वलिपि में ही होगा ।

२२

विश्वभाषा की तुलना में विश्वलिपि का प्रयोजन बहुत कम है और विश्वपोशाक का तो प्रयोजन ही नहीं है । केवल विश्व पोशाक के ही क्यों , विभिन्न राष्ट्रों का राष्ट्रीय पोशाक के रूप में कुछ रहे , यह भी मेरे विचार से अवांछनीय है ।

मनुष्य अपने पोशाक का चुनाव स्थानीय जलवायु तथा पारिपार्श्विकता (environment) के अनुकूल तथा शारीरिक और पेशागत स्थिति के अनुसार करता है । अतः किसी के पोशाक के सम्बन्ध में किसी तरह का मन्तव्य न देना ही अच्छा है । दृष्टान्त रूप में कह सकता हूँ कि पूर्व

पाकिस्तान का स्वाभाबिक पोशाक लुंगी धोती और बंगला कुरता है , किन्तु कल - कारखाने में काम करने के समय पूर्व भारत के लोग प्रयोजन की खातिर पैन्ट पहन लेते हैं । ठीक उसी प्रकार उत्तर - पश्चिम भारत और पश्चिम पाकिस्तान की खानदानी पोशाक पैजामा - शिरवानी होने पर भी उस अञ्चल के किसान · खेत जोतते समय ऐसी पोशाक नहीं पहनते । ऐसी अवस्था में कौन सी पौशाक अच्छी है और कौन - सी बुरी इसका प्रश्न ही नहीं उठता ।

२३

मनुष्य जाति की संस्कृति एक ही है । अनेक प्रकार की संस्कृतियां हैं , इसे मैं मानने को तैयार नहीं हूं । हां इतना कहा जा सकता है कि इस मनुष्य जाति की विभिन्न गोष्ठियों के बीच नाच -

गान , उच्चारण तथा उत्सवादि अनुष्ठानों में स्थानीय वैचित्र्य है । इस स्थानीय वैचित्र्य या आचार - व्यवहार के तारतम्य को संस्कृतिगत भेद के रूप में नहीं माना जा सकता है ।

मनुष्य के इस स्थानीय आचार - व्यवहार के भेदों को कानून के जोर से या डिक्टेटरी शासन चलाकर दूर नहीं किया जा सकता है । आचार - व्यवहार , भाषा तथा अन्यान्य स्थानीय परम्पराओं को राष्ट्रीय एकता या राष्ट्रीयतावाद के नाम पर ध्वंस करने की कोशिश से इसके फलस्वरूप पारस्परिक हिंसा और अविश्वास का अंकुर जमेगा और सामूहिक जीवन को अकल्याण की राह पर ले जायेगा । मैं सामाजिक संश्लेषण का पक्षपाती हूं । मेरे मतानुसार मनुष्य जितना घनिष्ठ भाव से अन्यान्य मनुष्य के साथ मिलेंगे , पृथिवी के एक कोण दूसरे कोणों के जितना निकट पहुंचेंगे आचार - व्यवहार में स्थानीय

वैशिष्ट्य उतना ही पारस्परिक मिलने जुलने के फल से नूतनतर रूप ग्रहण करते रहेंगे । विभिन्न बगीचों के फूल एकत्र होकर गुलदस्ते में परिणत होंगे और उसका सौन्दर्य फूल के सौन्दर्य की अपेक्षा कम न होगा , अपितु अधिक ही होगा । ध्रुपद राग खेयाल में परिणत होगा , राग - संगीत कीर्तन तथा मिश्र संगीत का रूप लेगा । विभिन्न देश या तथाकथित विभिन्न गोष्ठीबद्ध मनुष्य यदि सामाजिक मेल - मिलाप या पारस्परिक वैवाहिक सम्पर्क की स्थापना में उत्साह दिखायें तो उसके फलस्वरूप अति अल्पकाल में ही इस प्रकार का सामाजिक संश्लेषण संसाधित हो सकता है । कसमापलिटन (Cosmopolitan) शहरों में हमलोग इसकी सार्थकता कुछ - कुछ देख रहे हैं ।

२४

पृथ्वी की जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ रही है । अनेक लोग इससे वास्तव में शंकित हो गए हैं । पूँजीवादी देशों में इससे शंकित होने के लिए यथेष्ट कारण भी है । वहाँ पर जनसंख्या की बृद्धि का अर्थ है जनता की अधिकाधिक दरिद्रता । किन्तु सामूहिक अर्थनैतिक व्यवस्था के अनुसार जनसंख्या में वृद्धि होने से शंकित होने का कोई कारण नहीं है । सामग्रिक जनसंख्या के आहार तथा वासस्थान की कमी होने पर मिलित प्रचेष्टा द्वारा परती अञ्चलों में नूतन शस्यक्षेत्र बना लेंगे तथा वैज्ञानिक प्रचेष्टाओं के द्वारा जमीन की उत्पादिका शक्ति को बढ़ा लेंगे और रासायनिक प्रक्रियाओं के द्वारा मिट्टी - जल - वायु से मनुष्यों के खाद्य को तैयार कर लेंगे । यदि पृथ्वी एकदम कृपण भी हो जाय तो भूमिविहीन मनुष्य का दल विभिन्न ग्रह तथा उपग्रह में जा बसेगा ।

जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था आज भी चालू है वहां व्यक्तिगत भाव से पारिवारिक अभाव (गरीबी) से छुटकारा पाने के लिए यदि कोई जन्म नियन्त्रण व्यवस्था का आश्रय ले तो उसके विरुद्ध कुछ नहीं कहना है । स्त्री तथा पुरुष के शरीर में विकृति लाकर या उनकी प्रजनन शक्ति को सदा के लिए नष्ट करके जन्म नियन्त्रण की प्रचेष्टा का समर्थन कभी भी नहीं किया जा सकता है , क्योंकि ऐसा करने से किसी भी मुहूर्त में उन लोगों में उग्र प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया दिखाई दे सकती है ।

२५

विज्ञान द्रुतगति से आगे बढ़ रहा है । यह बढ़ रहा है और बढ़ेगा भी । विज्ञान की निन्दा कर इसकी अग्रगति को कोई रोक नहीं सकता है । जो इस

तरह की चेष्टा करना चाहेंगे वे स्वयं पीछे पड़ जायेंगे तथा वर्तमान जगत् में अप्रयोजनीय माने जायेंगे । मनुष्य वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अपनी आयु को भी अवश्य बढ़ा पायेंगे । कुछ विशेष क्षेत्रों में मृतकों में भी प्राण का सञ्चार कर पायेंगे । विज्ञान के उस सुदिन को शीघ्र ही लाने की प्रचेष्टा निश्चय ही जीव सेवा का एक अङ्ग । एक दिन वैज्ञानिक प्रयोगशाला में मनुष्य मानव - शिशु का निर्माण करना सीखेंगे । उस समय संभव है कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुकूल सन्तान प्राप्त कर सकेंगे । प्रयोगशाला द्वारा निर्मित शिशु आज के मानव की अपेक्षा बुद्धिबृत्ति में या साधना द्वारा अध्यात्म सम्पद प्राप्ति में किसी तरह पीछे नहीं रहेंगे ! आज विज्ञान - विरोधियों · का कहना है कि मनुष्य एक जीवित वस्तु की रंचना तो कर दिखायें ? भविष्य में मनुष्य उसका निर्माण कर ही इस प्रश्न का मुँहतोड़ जवाब

देंगे । प्रज्ञा का विकास उस काल के मनुष्यों को अधिकाधिक अध्यात्म भावापन्न कर पायेगा । सगुण ब्रह्म आज प्रत्यक्ष भाव से जो कार्य कर रहे हैं पृथ्वी में उनका वह कार्य अधिक से अधिक अंश में क्रमशः मानवीय आधार के माध्यम द्वारा होता रहेगा । किन्तु उस समय मानव देह की प्रजनन शक्ति धीरे - धीरे लुप्त हो जायगी ।

२६

मानवीय ऐक्य में जो बाधा उपस्थित करते या बाधा देने की चेष्टा करते हैं उनमें दलगत राजनीति ही मुख्य है । बस्तुतः यह रोग कीटाणुओं से भी अधिक भयंकर है । इससे धीरे - धीरे मानव मन की समस्त सुकुमार बृत्तियां , समस्त सरलतायें तथा सेवापरायणतायें सम्पूर्ण भाव से नष्ट हो जाती हैं । इसमें व्यष्टि की योग्यता की अपेक्षा दलीय छाप की

मर्यादा ही अधिक है । जनसेवा नहीं - आत्मसेवा ही प्रधान लक्ष्य है , कल्याण नहीं - वजारत ही बड़ी है । जनसाधारण को धोखा देना , कलावाजी दिखाना- ये सब उन सबों के लिए साधारण बातें हैं । स्वयं को संशोधन करने की प्रचेष्टा नहीं कर ये लोग केवल वाग्शीलता द्वारा ही सब कुछ करना चाहते हैं । जनसाधारण की दुर्बलताओं को समझ कर डींग बखार कर जनसाधारण में से एक को दूसरे के विरुद्ध लड़ाकर ये लोग राजसिंहासन दखल करना चाहते हैं या कायम रखना चाहते हैं । मनुष्यों को इनसे सतर्क होकर रहना है । समाजजीवन , धर्मजीवन , शिक्षा और साहित्य क्षेत्र में सभी स्थानों में यें लोग नाक घुसाना चाहते हैं । वक्तृता मञ्च से लम्बी चौड़ी बोलियां सुनाने से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की अभिज्ञता तथा विलक्षणताएँ अर्जित नहीं हो सकती है

। इस तत्त्व से वे सत्ता मोह के कारण विस्मृत होकर रहना चाहते हैं ।

२७

सत् तथा जनकल्याणकामी व्यक्ति इसीलिए दलीय राजनीति से सथन अलग ही रहे । प्रश्न उठ सकता है कि यह दलीय राजनीति नहीं रहने से क्या सत् व्यक्ति अकेले ही राष्ट्र गठन या राष्ट्र सेवा में सफलता प्राप्त कर सकेंगे ? क्या उनके बीच संघबद्धता की जरूरत बिलकुल नहीं है ? इसके उत्तर में मैं तो कहूँगा - जो सत् हैं , जो सचमुच जनकल्याणकामी विश्वराष्ट्र के तथा " आनन्द परिवार " के आदर्श के विश्वासी हैं उनके बीच सहयोग का भाव रहेगा ही । सिर्फ मिलित भाव से जनसेवा करने का उद्देश्य लेकर (गुटबन्दी के लिए

नहीं) ये बोर्ड जैसा कोई संघ बना सकेंगे । किन्तु बोर्ड की ओर से वोट की प्रतिद्वन्द्विता करनी उचित नहीं होगी । लोग योग्य मनुष्य को वोट देंगे , दलीय लैम्प पोस्ट को नहीं । दलीय राजनीति प्रकाश्य रूप से जिसका विरोध करती हैं , दलीय स्वार्थ सिद्धि के लिए गोपन भाव से उसे प्रश्रय देती है । साम्प्रदायिकता , प्रादेशिकता , जातिवाद (casteism) दलीय स्वार्थ के लिए ये सभी खराब नहीं है । मनुष्य का एकमात्र परिचय है यह कि वह मनुष्य या जीव है , दलीय राजनीति इस बात को भुला कर रखना चाहती है । दलीय राजनीतिक स्वार्थ का स्टीम रोलर चलाकर मनुष्य की मानस सम्पद को चूरकर धूल में मिला देना चाहती है ।

२८

सृष्टि जब तक है तब तक विद्या तथा अविद्या में संग्राम रहेगा ही । आध्यात्मिकता - विमुख राजनीतिज्ञ वक्तृता के मञ्च से लम्बी – चौड़ी बातें सुनाकर या सफेद कबूतर उड़ाकर इस संग्राम को नहीं रोक सकेंगे । अविद्या के विरुद्ध संग्राम करने के लिए मनुष्य को शक्तिशाली बनना ही होगा । इस दिशा में अस्त्रशक्ति , मानसिक शक्ति तथा आध्यात्म्यशक्ति तीनों की आवश्यकता है । कपटाचरण जिसकी रोजी है वे आध्यात्मिक साधना नहीं करेंगे । स्वार्थ के लिए आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में कितने ही लम्बे - चौड़े भाषण ये लोग क्यों न दें जनसाधारण को आध्यात्मिक साधना में प्रबुद्ध करने में ये लोग समर्थ नहीं होंगे । क्योंकि इन लोगों में उस प्रकार की चारित्रिक दृढ़ता नहीं रहती है । इनके घपले में तिक्त - विरक्त होकर जनसाधारण इस प्रकार के नेताओं से मानसिक

सम्पद का भी कोई उपकरण नहीं पायेंगे । अन्त में उन्हें निर्भर करना होगा केवल अस्त्रबल के ही ऊपर । इस प्रकार से भी देखा जाता है कि केवल पशु - शक्ति ही इस प्रकार के राजनीतिज्ञों का एकमात्र सहारा है ।

२९

दलगत राजनीति की घपलेबाजी से जनता को अल्प काल के लिए विमूढ़ कर रखा जा सकता हैं । खास तौर पर यदि ये घपले बाज अच्छे वक्ता हों , वक्तृता के बल पर ही ये लोग कृतकर्मों के फल से छुटकारा पाने की चेष्टा करते हैं । देखा जाता है कि दलीय स्वार्थ तथा अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए ये राजनीतिज्ञ करोड़ों मनुष्यों के कलेशों का कारण बनने में भी जरा नहीं शर्माते हैं । कर्त्तव्य

की दृष्टि से जनसाधारण के लिए यह उचित है कि ऐसे अपराधी नेताओं को Impeach (विशेष न्याय विचार) करें । अल्पबुद्धि जनता के सामने दो - चार गरमागरम बातें सुनाकर , ये दलीय स्वार्थ के ध्वजाधारी लोग , जनता की समस्त आशा , आकांक्षा और समृद्धि सब कुछ को धूल में मिला देते हैं और उनके मन में अजीब - अजीब भावनाएँ घुसाकर उन्हें विभ्रान्त कर देते हैं । जनता अपने कर्तव्य को भूल बैठती है , अपनी मांग को भी भूल जाती है ।

३०

विद्या तथा अविद्या का संग्राम चिरकाल तक चलता रहेगा । अतएव पुलिस तथा मिलिट्री का प्रयोजन न्यूनाधिक चिरकाल तक रहेगा ही । अवश्य

ही विश्वराष्ट्र की प्रतिष्ठा हो जाने पर इनका प्रयोजन कम हो जायगा किन्तु विद्या और अविद्या का संग्राम रहने से वर्ग संघर्ष न्यूनाधिक चिरकाल तक रहेगा ही । अतः श्रेणीहीन समाज प्रतिष्ठा होने पर , हाथ , पाँव मोड़कर सुख की नींद सोयेंगे , ऐसी कल्पना जो करते हैं उन्हें हताश होना होगा ।

३१

दलीय राजनीति के हाथों शिक्षा व्यवस्था को यत्नपूर्वक दूर रखने की आवश्यकता है । शिक्षा व्यवस्था का आर्थिक दायित्व राष्ट्र का है किन्तु पठन - पाठन , पाठरीति तथा पाठनिर्वाचन का एकमात्र अधिकार शिक्षाव्रतियों के हाथों में ही रहना चाहिए । राष्ट्र इन शिक्षाव्रतियों तथा विश्वविद्यालयों को परामर्श दे सकता है , किन्तु स्वीकार करने के

लिए दबाव नहीं दे सकता है । वेतार - व्यवस्था , सिनेमा आदि जो सब चीज लोक शिक्षा की दृष्टि से गुरुत्वपूर्ण हैं , इन सबों के सम्बन्ध में भी उपरोक्त नीति ही जरूरी है । इन सबों को दलीय · स्वार्थ का जय - ढाक (बड़ा - ढाक) बनने का मौका नहीं दिया जा सकता है ।

३२

प्रश्न उठता है कि विश्वराष्ट्र या आनन्द - परिवार की स्थापना क्या बिना संग्राम के ही हो जायगी ? इसके उत्तर में मैं कहूंगा- ' हाँ , जो लोग विश्वराष्ट्र या आनन्द - परिवार की स्थापना चाहते हैं उनकी प्राण - शक्ति को राजनीतिक घूर्णावर्त्त (चक्कर) में न डालकर अर्थात् राजनीतिक संग्राम न कर केवल सेवा के माध्यम से

ही , रचनात्मक कार्यों के माध्यम से ही मनुष्य जाति का यह चरम कल्याण हो सकता है । ' मन में कोई उद्देश्य न रख , निष्ठा के साथ जनसेवा करते जाना होगा । जो राष्ट्र जनसेवा कार्य के लिये इन सेवाव्रतियों को सहयोग प्रदान करेंगे उन्हें समझना होगा कि ये विश्वराष्ट्र तथा आनन्द - परिवार की ही स्थापना चाहते हैं । जो राष्ट्र सहयोग नहीं देंगे वहाँ की जनता . भड़क उठेगी और ये भड़की हुई जनता विप्लव के द्वारा विश्वराष्ट्र तथा आनन्द - परिवार की स्थापना कर लेगी । इसीलिए सेवाव्रतियों को · दलीय राजनीति की गन्दगी में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है ।

जो समाज को रोगमुक्त करना चाहते हैं उन्हें प्रत्येक मनुष्य के ऊपर नजर रखनी होगी । व्यक्ति की शुद्धि से ही समष्टि की शुद्धि होगी । नहीं तो सिर्फ राजनीतिक मञ्च से लम्बी - चौड़ी वक्तृता

देकर समष्टि जीवन का मनोन्नयन सम्भव नहीं है । एकमात्र आध्यात्मिक शिक्षा ही सद्विप्र का निर्माण कर सकती है । ये सद्विप्र वे ही हैं जो यम - नियम में प्रतिष्ठित हैं— जो भूमाभाव के साधक हैं ।

राजनीतिक नेतागण वक्तृता के मञ्च से गलाबाजी कर सद्विप्र नहीं बना सकते हैं ; इसके लिए साधुता तथा अन्तर्शुद्धि का अनुशीलन करना ही है । इसके अलावा यह भी है कि इन मञ्चों से भाषण देनेवाले कौन हैं ? जो दलीय राजनीति लेकर दूसरों पर कीचड़ उछालते हैं वे ही न ? उनमें से अधिकांश तो क्षमता के मोह में अन्ध हैं ! वे दूसरों को क्या सिखायेंगे ? " अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः । "

शासनतान्त्रिक व्यवस्था के अनुसार जनतन्त्र को चरम या परम रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । मनुष्य इस दिशा में जितने भी प्रकार की व्यवस्थाओं का उद्भावन कर पाये हैं उन सबों में जनतन्त्र को बुरा होने पर भी अच्छा कहा जा सकता है । भविष्य में इसके अलावा अन्य कोई अच्छी व्यवस्था दीख पड़ने पर उसे मनुष्यों को हृदय से मान लेना उचित कार्य होगा । जनतन्त्र की अनेक त्रुटियां मनुष्यों की आँखों के सामने दिखाई दे रही हैं और मनुष्य उनको सुधारने के काम में भी हाथ लगा चुके हैं ।

जनतांत्रिक व्यवस्था में सर्वाधिक वोट प्राप्त करना ही व्यक्ति की योग्यता को प्रमाणित करता है । किन्तु इस योग्यता को सर्वत्र यथायथ भाव से जाँचा नहीं जाता है । मैं समझता हूं कि जिन्हें सर्वाधिक वोट मिला है उनके द्वारा प्राप्त वोट की

संख्या सम्पूर्ण वोट के आधे से कम होने पर , पुनः उनकी जनप्रियता की परीक्षा होनी उचित है । इस परीक्षा में उनके पक्ष तथा विपक्ष में वोट लेने की व्यवस्था रखनी होगी । वे तभी निर्वाचित घोषित किये जायेंगे जब उनके पक्ष में अधिक वोट आवें ।

किसी भी उम्मीदवार को बिना प्रतिद्वन्द्विता के निर्वाचित घोषित नहीं करना चाहिए । वित्तशाली और प्रभावशाली लोग रूपये का लोभ दिखाकर अथवा भय दिखाकर अन्यान्य प्रतिद्वन्द्वीगण को मनोनयन वापस ले लेने को बाध्य कर सकते हैं । इसीलिए जिस क्षेत्र में निर्वाचन प्रार्थी केवल एक ही व्यक्ति रह जाता है उस दिशा में भी उनकी जनप्रियता की परीक्षा करनी होगी । उक्त परीक्षा में यदि वे पराजित हो जायें तो उनको तथा अन्यान्य मनोनयन पत्र वापस लेनेवालों को उस केन्द्र मे उप- निर्वाचन में प्रतिद्वन्द्विता करने के अधिकार से वञ्चित

करना होगा , अर्थात् उन्हें परवर्त्ती निर्वाचन की अवधि तक प्रतीक्षा करनी होगी ।

यद्यपि जनतान्त्रिक विधि के अनुसार " सुरक्षित सीट " का रक्खा जाना नियम विरोधी है तथापि अनग्रसर जनगोष्ठियों के लिए कुछ दिनों के लिए सुरक्षित सीट की व्यवस्था रक्खी जा सकती है । किन्तु साधारणतः देखा जाता है कि अनग्रसर गोष्ठियों के प्रतिनिधियों के बीच योग्यता सम्पन्न व्यक्ति बहुत ही कम पाये जाते हैं । अतः सुरक्षित सीट की प्रतिद्वन्द्विता करने का अधिकार किसी गोष्ठी विशेष तक ही सीमित नहीं रहना ही उचित है । इस सुरक्षित सीट के आवेदनकारी का प्राथमिक निर्वाचन के समय केवल जिस जनगोष्ठी के लिए सीट सुरक्षित है उन लोगों को वोट देने का अधिकार होना चाहिए । इस प्रकार से वे एक जगह के लिए प्राथमिक निर्वाचन के काल में दो व्यक्तियों को

मनोनीत कर पायेंगे , बाद में सर्वसाधारण के वोट के द्वारा इन्हीं व्यक्तियों में से कोई एक चूड़ान्त (final) भाव से निर्वाचित होंगे । प्राथमिक निर्वाचन के समय यदि एक ही व्यक्ति मनोनीत हो अर्थात् और कोई प्रतिद्वन्द्वी न हो तो उस दिशा में उनकी जनप्रियता की परीक्षा सर्वसाधारण के बीच में करनी ही होगी । सुरक्षित सीट की व्यवस्था के लिए यदि कोई अनग्रसर या अल्पसंख्यक सम्प्रदाय स्पष्ट भाषा में माँग करें तो कभी ऐसी व्यवस्था करनी होगी - अन्यथा नहीं ।

निर्वाचन के उम्मीदवारों के लिखित रूप से अपनी नीति की घोषणा करनी होगी । निर्वाचन के बाद अगर वे इस नीति के विरुद्ध काम करें तो उसके ऊपर अदालत में इसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिए मुकदमा किया जाय और यदि वे हार जाँय तो उनका निर्वाचन रद्द कर दिया जाय । " प्राप्तवयस्क

वोट दे सकते हैं " यह कथा सुनने में बहुत अच्छी लगती है किन्तु यह बात भी अस्वीकृति के योग्य नहीं है कि राजनीतिक चेतनाविहीन मतदाता शासन यन्त्र को दुर्बल · कर देते हैं , इसीलिए अशिक्षित या अल्पशिक्षित मनुष्यों को मतदान करने के अधिकार से जनस्वार्थ के लिए वंचित रखना वांछनीय है । अशिक्षित देशों में जनतन्त्र एक प्रहसन मात्र है । उस सभी देशों के चतुर धोखेबाज अत्यन्त सरलता से अशिक्षितों के वोट हथिया ले सकते हैं या खरीद भी सकते हैं । जातिवाद या सम्प्रदायवाद का प्रचार कर अशिक्षित देश की जनता को सहज ही विभ्रान्त किया जा सकता है । जनतन्त्र की सार्थकता निर्भर करती है शिक्षित संवेदनशील मतदाताओं के ऊपर , इसीलिए जनतांत्रिक देशों में शिक्षा विस्तार का प्रयोजन सर्वाधिक है और जनता की सुविधा के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था भी अवश्य ही करनी होगी ।

इस शिक्षा व्यवस्था के ऊपर राष्ट्रीय दबाव रहना उचित नहीं क्योंकि इस दिशा में क्षमताशाली दल शिक्षा के माध्यम से दलीय भावधारा का ही प्रचार करता रहेगा । क्षण - क्षण सरकार बदलेगी और क्षण - क्षण यह शिक्षा व्यवस्था भी परिवर्त्तित होती रहेगी । इसके फल से समग्र व्यवस्था बिगड़ जायगी ।

शिक्षा व्यवस्था में विश्वात्मक भाव को छोड़ और किसी प्रकार के ' इज्म ' का रहना नहीं चल सकता हैं । छात्रगण के ज्ञानार्जन की स्पृहा को जगाना होगा । श्रद्धाभक्ति , अनुशासन , नियमानुवर्त्तिता सिखानी होगी । तथा विज्ञानसम्मत दृष्टिभंगी भी दिलानी होगी । जिस छात्र में वैज्ञानिक निष्ठा जाग उठी है उसके मन में कुसंस्कार घर नहीं बना सकता है । ' इज्म ' का वाक्जाल उसे विमुग्ध

नहीं कर सकता है— भावी जीवन में सदविप्र होने की योग्यता वे सहज ही अर्जन कर लेंगे ।

३४

समाजचक्र घूमता रहता है । शूद्रयुग के वाद सरदार युग अर्थात् क्षात्र युग , उसके बाद विप्रयुग , इसके वैश्ययुग एवं शुद्र - विप्लव के बाद चक्र की द्वितीय परिक्रान्ति में नूतन क्षात्र - युग आता है । यह नूतन क्षात्र - युग उन क्षत्रियों का युग है जिन लोगों ने शूद्र विप्लव का नेतृत्व किया था । चक्र इस प्रकार से चलता ही रहता । सिर्फ आदर्शवाद का प्रचार कर इस चक्र का घूमना रोका नहीं जा सकता है । एक युग के बाद दूसरा युग क्रमविन्यस्त भाव में है । एक युग के गमन के बाद दूसरे के आगमन का नाम क्रान्ति दे सकता हूँ । एक शेष और दूसरे की शुरूआत के इस युगसन्धि की अवस्था को

युगसंक्रान्ति कह सकता हूँ । शूद्र - अभ्युत्थान के बाद से परवर्ती शूद्र - अभ्युत्थान तक इस सम्पूर्ण चक्र परिक्रमण को परिक्रान्ति नाम दे सकता हूँ । एक एक युग में एक - एक वर्ण शासक तथा शोषक की भूमिका में अवतीर्ण होता है ।

यह विश्व , यह समाज सबों का है । इसकी प्रत्येक धूलिकणा प्रत्येक की पैतृक सम्पत्ति है । इसीलिए किसी वर्ण विशेष का राजत्व चलने देना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है । चक्र की परिक्रान्ति चलेगी ही ओर सङ्ग - ही - सङ्ग चलाते जाना होगा प्रत्येक वर्ण - विरुद्ध सद्विप्र का संग्राम । समाज सबों का है , किन्तु इसका अधिनायकत्व करेंगे सदविप्र ही । क्षत्रियों के ऊपर समाज का भार नहीं छोड़ा जा सकता हैं , क्योंकि वे क्षत्रिय राज्य कायम करना चाहेंगे । अक्षत्रिय का शोषण करेंगे , दुर्बल को चबा खायेंगे । विनों के

ऊपर समाज का भार नहीं छोड़ा जा सकता हैं क्योंकि वे विप्र - राजत्व कायम करना चाहेंगे .... अविप्र का शोषण करेंगे तथा बुद्धिहीनों को चबा खायेंगे । वैश्यों के ऊपर समाज का भार नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि वे वैश्य - राजस्व कायम करना चाहेंगे - अवैश्यों का शोषण करेंगें तथा मेहनती मनुष्यों को चबा डालेंगे । शूद्र समाज का नेतृत्व नहीं ले सकता है । शूद्र अभ्युत्थान के फल से जो शूद्रों की जय होती है वह जयतिलक क्षत्रियों के ललाट की शोभा बढ़ाता है । जो यम - नियम में प्रतिष्ठित हैं , जो भूमा के साधक हैं , ऐसे ही सद्वित्रों के हाथों में भार दिया जा सकता है । समाज चक्र ठीक ही घूमता चलेगा । यथाविधि क्षत्रिय , विप्र और वैश्यों का भी अभ्युत्थान होगा । किन्तु सद्विप्र का अधिनायकत्व रहने से इस अभ्युत्थान के फल से वे समाज जीवन में कुछ प्राधान्य लाभ करने पर भी

किसी भी काल में सर्वमय · कर्ता के रूप में आसीन न हो पायेंगे । सद्‌वित्रों को कभी विश्राम नहीं मिलेगा ; उन्हें अक्लान्त भाव से संग्राम जारी रखना होगा । यह संग्राम ही जीवों का जीवन है । यह संग्राम नहीं रहने से सृष्टि भी न रहेगी । सदविप्र लोग एक ही आधार में विप्र , क्षत्रिय , वैश्य तथा शूद्र । अतः उनके अधिनायकत्व से सर्ववर्ण की जय सूचित होती हैं ।

३५

सभी गतियाँ संकोचविकासी हैं । शक्ति सम्प्रयोग के द्‌वारा संकोच को और भी संकुचित कर देने से परवर्त्ती विकास में उल्लम्फन दिखाई देता है । इस उल्लम्फित विकास के फल से सृष्ट क्रान्ति को

विप्लव कहना संगत होगा । ठीक उसी प्रकार से शक्ति सम्प्रयोग के द्वारा विकास को दीर्घायत कर देने से परवर्ती संकोच में अधिक परिमाण में जड़ता दिखाई देती है ।

शक्ति सम्प्रयोग के द्वारा किसी भी युग को पीछे ले जाने से अर्थात् वैश्य युग से विप्र युग या विप्रयुग से क्षात्रयुग में ले जाने से विक्रान्ति कह सकता हूँ । यह विक्रान्ति या प्रतिविल्पव दीर्घस्थायी नहीं होते हैं ।

वर्त्तमान जगत् में दो - एक अनग्रसर देशों में आज भी क्षात्रयुग , या विप्रयुग चल रहा है । अधिकांश प्राग्रसर देशों में वैश्य युग का साम्राज्य है । दो एक देशों में अभ्युत्थान के बाद नूतन क्षात्रयुग दिखलाई पड़ रहा है । कहीं - कहीं तो नूतन विप्र युग की सूचना भी सुनाई दे रही है ।

३६

प्रकृत अध्यात्म्य दर्शन ही विश्व - समस्या के समाधान का एक मात्र पथ है । इस विचार से आनन्दमार्ग आदर्श को स्पर्शमणि (परश पत्थर) कह सकता हूँ । कवि - कल्पना का स्पर्शमणि जैसे सभी वस्तुओं को सोना बना देता है , ठीक उसी प्रकार से आनन्दमार्ग के दर्शन का जिस किसी भी समस्या के ऊपर प्रयोग क्यों न किया जाय उसका न्याय - धर्मसम्मत सदुत्तर वह अवश्य ही देता है ।

३७

मनुष्य की क्षुधा अनन्त है । इस अनन्त क्षुधा को वह यदि जागतिक भोग्य वस्तुओं की ओर चला

दे तो मनुष्य - मनुष्य के बीच संघर्ष अवश्य ही होगा क्योंकि जागतिक सम्पद सीमित है । एक के पास सम्पद का प्राचुर्य हो जाने से दूसरे के पास अभाव दिखलाई देगा । ' ब्रह्म ' मनुष्य की अनन्त स मानसिक को अध्यात्म सम्पद को मनुष्य के लिए बनाकर रख दिया है । मनुष्य को इस सम्पद् का उपयोग करना ही होगा ।

एकता एवं सद्बुद्धि मनुष्य को सार्थकता की ओर ले जाती है । इस सदबुद्धि को जगाने के लिए दर्शन की मोटी - मोटी पुस्तकें काम में नहीं आयेंगी । इसके लिए व्यक्तिगत जीवन में यम - नियम का अनुशीलन करना होगा । ऐक्य स्थापना के लिए एक इस प्रकार का आदर्श चुन लेना होगा , जिसे दैशिक , कालिक या पात्रिक भेद प्रभावित न कर सके । इसीलिए भूमा आदर्श – बाह्मी आदर्श को ही जीवन के ध्रुवतारा के रूप में ग्रहण करना होगा । जो यम

– नियम में प्रतिष्ठित है – जो भूमा के साधक हैं , पूर्व ही कह चुका हूँ कि वे ही सदविप्र हैं । मनुष्य का प्रतिनिधित्व केवल वे ही कर पायेंगे । निःस्वार्थ भाव से जीव सेवा वे ही केवल कर सकते हैं । मनुष्य ऐसे सद्विप्र को उनके आचरण , उनकी सेवा – परायणता , उनकी धर्मनिष्ठा तथा चारित्रिक दृढ़ता को देखकर पहचान लेगा ।

यह सद्विप्र दृढ़ कण्ठ से घोषणा करेंगे– " सभी मनुष्यों की एक ही जात है " , " प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है " , " मानव मानव भाई हैं " । ये ही सद्विप्र वज्रकण्ठ से समाज के शोषकों को अगाह करेंगे– " मनुष्य का शोषण नहीं चलेगा " , " धर्म के नाम पर शोषण नहीं चलेगा " । शतधाविच्छिन्न मनुष्य समाज की सेवा तथा त्याग के प्रतीक गेरुआ झण्डा के नीचे आह्वान कर वे

उदात्त कण्ठ से कहेंगे- " दुनियाँ के मनुष्य एक हों " और गायेंगे –

“संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते 11
समानी व आकुतीः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥”

(२६ जनवरी , १९५८ ई ० के रिनासंस क्लब की उपलक्ष्य में त्रिमोहान (भागलपुर) युवक सम्मेलन का अभिभाषण ही निबन्ध के रूप में इस पुस्तक में प्रकाशित हुआ है)

****

[यह लेखन पीछे का कवर पन्ना में है।]

सम्पूर्ण जीव-जगत् एक वृहत् यौथ (Joint) परिवार है । इस बात को क्षण भर के लिये भी नहीं भूलना चाहिए। प्रकृति ने विश्व की किसी आंशिक सम्पत्ति को भी व्यक्ति विशेष के नाम से लिख-पढ़ नहीं दिया है । व्यक्तिगत मालकियत की सृष्टि स्वार्थी सुअवसरवादी मनुष्यों ने किया है, क्योंकि वे इस प्रकार की व्यवस्था की दुर्बलता के कारण शोषण कर स्वयं अपनी धमनियाँ मोटा करने का अवसर पा जाते हैं। इस विश्व - ब्रह्माण्ड की सभी सम्पत्ति जब जीव मात्र की ही पैतृक सम्पत्ति है तो किसीके घर में प्राचुर्य का स्त्रोत हो और कोई अनाहार से

तिल-तिल सूख कर मरे तो क्या इस व्यवस्था को धर्म- · संगत कहा जा सकता है ?

यौथ परिवार का हरेक व्यक्ति अपनी क्षुधा या प्रयोजनानुसार अन्न-वस्त्र-शिक्षा-चिकित्सा या आराम की व्यवस्था, समग्र परिवार की आर्थिक संगति के अनुसार पाता है । किन्तु यदि परिवार का कोई सदस्य अपने प्रयोजन के अतिरिक्त अन्न, वस्त्र, पुस्तक या औषधि को अपने जिम्मे रख ले तो उस परिवार के अन्य सदस्यों के लिए क्या यह कष्टकारी नहीं है ? इस व्यवस्था में उसका यह कार्य निश्चय ही धर्मविरोधी है, समाजविरोधी है ।

-श्री प्रभातरञ्जन सरकार

समाप्त

**********X**********

घोषणा

लिंग, जाति, पंथ, धर्ममत, अमीर , गरीब आदि को विचार किए बिना सभी मनुष्यों को आध्यात्मिक साधना सीखने , अभ्यास करने और आध्यात्मिकता के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए मार्गदर्शन प्राप्त करने का समान अधिकार है। अध्यात्मिक साधना विज्ञान को 'योग' भी कहा जाता है। योग के ज्ञान का कभी भी व्यावसायिक

उद्देश्य के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। इसका वितरण नि:शुल्क होना चाहिए। यह साधना कोई भी आदमी "आनंद मार्ग प्रचारक संघ" के सन्यासियों और सन्यासिनीयों से किसी भी समय, नि:शुल्क सीख सकता है।

मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य परम शांति या आनंद का अनुभव करना है। केवल ईश्वर प्राप्ति के द्वारा ही आनंद प्राप्ति कर सकता है। योग साधना से ही ईश्वर प्राप्ति संभव है; और कोई रास्ता नहीं है।